# छत्तीसगढ़ के सामंती राज्यों में जन आंन्दोलन

डॉ. अविनाश अवस्थी
शिक्षा विभाग, दुर्ग

छत्तीसगढ़ के सामंती राज्य मध्यप्रांत के अंतर्गत आते थे। इन राज्यों के समूहों में किसी भी दृष्टि से कोई समरूपता नहीं थी। यह ऐसे इकाईयों से मिल कर बने थें, जो भौगोलिक संरचना और निवासियों की सभ्यता के स्तर की दृष्टि से एक–दूसरे से पर्याप्त भिन्नता रखते थे। ये राज्य कलचुरी अथवा गोंड़ राजाओं की अधिसत्ता को स्वीकार करते थे। इस काल में जमींदार अपने अधिपति को किसी भी प्रकार से कर, भेंट या टकौली अदा नहीं करते थे, परन्तु आवश्यकतानुसार अपने अधिपति या केन्द्रीय शक्ति को सैनिक, आर्थिक सहायता पहुंचाते थे।[1] सन् 1741 ई. में कलचुरी सत्ता के पतनोपरांत छत्तीसगढ में मराठों की सत्ता स्थापित हुई। मराठों ने छत्तीसगढ़ की जमींदारियों को यथावत् रहने दिया तथा अपने लाभार्थ कुछ नयी जमींदारियाँ जैसे राजनांदगाँव, खुज्जी और छुईखदान बनाई।[2] 1818 से 1830 ई का समय ब्रिटिश संरक्षण काल था। इस समयावधि में जमीदारियों के साथ लिखित सम्बन्ध स्थापित किया गया। ब्रिटिश अधीक्षक मि. एग्न्यू ने जमींदारों से लिखित दस्तावेज पर हस्ताक्षर कराए, जिसे इकरारनामा कहा गया। जमींदारों से एक निश्चित राशि टकौली के रूप में वसूल की जाने लगी। उस समय यहाँ 27 जमींदारियाँ थी।

सन् 1857 ई. की क्रान्ति के समय अनेक देशी राज्यों व जमींदारियों ने तन–मन–धन से ब्रिटिश सरकार को सहयोग देकर क्रांति को असफल बना दिया था। क्रांति के समय देशी राज्यों तथा जमीदारियों के सहयोग ने ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास दिला दिया कि यदि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य कायम रखना हैं तों इन्हें यथावत् रखना जरूरी हैं। फलस्वरूप 1858 ई. में महरानी विक्टोरिया ने एक नवीन नीति की घोषणा की जिसके द्वारा देशी राज्यों तथा जमींदारियों को उनके अधिकार लौटा दिए गए एवं उन्हें सनदें प्रदान की गई।

भारत के मध्यवर्ती भाग में 1861 ई. में मध्यप्रान्त नामक एक नये प्रान्त का निर्माण किया गया। उस समय यहां की जमींदारियों की समस्या उत्पन्न हुई कि उनकी व्यवस्था एवं प्रबन्ध किस प्रकार किया जाए। अंततः 1862 में यह निर्णय लिया गया कि बहुत पुराने, शक्तिशाली और अधिक आबादी वाली जमींदारियों को राज्य का दर्जा देकर शेष जमींदारियों को मध्यप्रान्त के खालसा क्षेत्र में शामिल कर लिया जाए।[3] तद्नुसार छत्तीसगढ़ की शक्तिशाली और अधिक आबादी वाली जमींदारियों को सामंती राज्य अर्थात् यूडेटरी स्टेट घोषित किया गया। यहां के शासको को यूटेटरी चीफ कहा गया, जो अपने राज्यों का शासन पोलिटिकल एजेन्ट की सहमति से किया करते थे। इन सब को शासन संबंधी अधिकार ब्रिटिश सरकार की ओर से प्रायः एक समान प्राप्त था। उस समय छत्तीसगढ़ में चौदह राज्य थे जिसमें पाँच उडिया भाषी थे तथा शेष नौ हिन्दी भाषी थे। जब सन् 1905 में बंगाल प्रान्त का विभाजन और पुनर्गठन किया गया, तब उडिया भाषी पॉच राज्यों को बंगाल प्रांत में सम्मिलित कर दिया गया तथा छोटा नागपुर कमिश्नरी के पाँच राज्य जो हिन्दी भाषी थे, छत्तीसगढ़ में जोड दिये गये। इस प्रकार छत्तीसगढ़ अंचल में चौदह राज्य बनाये गये।

## ब्रिटिश हस्तक्षेप

छत्तीसगढ़ के सामंती राज्यों के अधिकार ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता को प्रस्तुत इकरारनामों तथा ब्रिटिश सत्ता द्वारा प्रदत्त सनदों तथा आदेश पत्रों पर आधारित थे। सन् 1818 ई. में अँग्रेजो ने रघुजी तृतीय को नागपुर की गद्दी पर बिठाया तथा छत्तीसगढ़ के शासन के लिए मेजर पी. वान्स एगन्यू को अधीक्षक बनाकर भेजा। भोंसले के द्वारा नियुक्त सूबों के सारे अधिकार छीन लिए गए।[4] सन् 1826 में रघुजी के वयस्क हो जाने पर रेसीडेंट जेनकिंस और रघुजी के मध्य हुई संधि के अनुसार अंग्रेजों ने छत्तीसगढ़ की जमींदारियों पर अपना अधिकार कायम रखा और उसके बदले भोंसला राजा को एक निश्चित राशि देना स्वीकार किया। 1853 ई. में एक माह की लंबी बीमारी के पश्चात्, नागपुर के अंतिम राजा रघुजी तृतीय की मृत्यु हो गयी तथा सन् 1854 में भारत के गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी की नीति के अनुसार नागपुर राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में मिला गया।[5]

* Corresponding Author: avinashawasthi81@gmail.com • Mobile No. 9827905155

सागर नर्मदा क्षेत्र, नागपुर तथा छत्तीसगढ़ को मिलाकर मध्यप्रांत का निर्माण सन् 1861 में किया गया था तथा यहाँ का प्रशासन एक चीफ कमिश्नर के नियंत्रण मे रखा गया था। मध्यप्रान्त का जन्म एक आकस्मिक घटना नहीं थी। नए जीत हुए या पूर्व में प्राप्त किए हुऐ प्रदेशों को एक सूत्र में बांधने के लिए आवश्यक था कि एक पृथक प्रांत बनाया जाए। सन् 1857 की क्रांति से उत्पन्न परिस्थितियों से निपटने के लिए कुछ कदम उठाने आवश्यक है।[6] संबलपुर, रायपुर, तथा नर्मदा क्षेत्र में क्रांतिकारी सक्रिय थे। अतः इस क्षेत्र की गतिविधियों पर सक्रिय नियंत्रण एक पृथक प्रांत द्वारा अच्छी तरह हो सकता था।

ब्रिटिश सरकार के समक्ष इस नवगठित प्रांत जिसमें जमींदारियों की संख्या बहुत अधिक थी, उनकी व्यवस्था का प्रश्न उपस्थित हुआ। सभी जमींदारियों को राज्य का दर्जा दिए जाने पर प्रशासनिक कठिनाईयाँ उत्पन्न होने की आशंका थी, तथापि ब्रिटीश शासन के हित में कुछ राज्यों को बनाए रखना आवश्यक समझा गया जो आपत्ति काल में उसका साथ दे सके। अतः सन् 1865 में ब्रिटीश सरकार ने मध्यप्रांत के इन छोटे राज्यों और जमींदारियों का उनके क्षेत्रफल, आबादी, राजस्व तथा उनके द्वारा भुगतान किए जाने वाले कर की राशि आदि के आधार पर वर्गीकृत कर मध्यप्रांत में कुछ राज्यों के निर्माण के लिए आवश्यक रूपरेखा तैयार की तथा यह निर्णय लिया गया कि बहुत पुरानी, शक्तिशाली और अधिक आबादी वाली जमींदारियों को सामंती राज्य (यूडेटरी स्टेट) के रूप में मान्यता प्रदान की जाये और शेष छोटी जमींदारियों को मध्यप्रांत में शामिल कर लिया जाए। परिणामतः पन्द्रह राज्यों का उद्‌भव हुआ, जिनमें से केवल एक मकराई (होशंगाबाद जिला) को छोड शेष छत्तीसगढ़ क्षेत्र में स्थित थी।[7]

सन् 1919 में ब्रिटिश शासन ने पोलिटिकल एजेंट छत्तीसगढ़ स्टेट्स का पदनाम परिवर्तित कर पोलिटिकल एजेंट सी.पी. युडेटरी स्टेट्स कर दिया। पोलिटिकल एजेंट रायपुर को मध्यप्रांत के समस्त राज्यों के लिए जस्टिस ऑफ पीस नियुक्त किया गया।[8] उस व्यवस्था के अनुरूप सामंती राज्यों से संबंधित प्रकरण कई अधिकारियों के माध्यम से होकर केन्द्र सरकार तक पहुँचते थे, जिसमें अत्याधिक विलंब होता था, अतः सन् 1920 में पोलिटिकल एजेंट को सीधे चीफ कमिश्नर नागपुर से संबद्ध करते हुए कमिश्नर रायपुर को सामंती राज्यों की अतिरिक्त जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि छत्तीसगढ़ की जमींदारियों को सामंती राज्य के सत्ता तक पहुँचने के लिए अनेक प्रक्रियाओं से गुजरना पडा। कुछ जमींदारियाँ तो ब्रिटिश क्षेत्रों में विलोपित हो गई, जबकि कुछ जमींदारियों को सामंती राज्य बना दिया गया। इसके साथ ही इन्हें ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता के सीधे नियंत्रण में रखा गया। यह नियंत्रण पोलिटिकल एजेंट, छत्तीसगढ़ के कमिश्नर, मध्यप्रान्त के चीफ कमिश्नर के माध्यम से वायसराय द्वारा संचालित होता था। वायसराय अथवा गृह सरकार द्वारा देशी राज्यों के संबंध में अखिल भारतीय स्तर पर जो नीतियाँ बनाई जाती थी, उसका प्रभाव छत्तीसगढ़ के सामंती राज्यों पर अवश्य पडता था, अर्थात ये सामंती राज्य हर प्रकार से ब्रिटिश हस्तक्षेप से मुक्त नहीं थे। यह बात ध्यान देने लायक है कि जब तक भारतीय जनजागृति ने काफी बल ग्रहण नहीं किया था तब तक ब्रिटिश सरकार भारतीय नरेशों को अत्यंत संदेह की दृष्टि से देखती थी तथा उन पर कडी निगरानी थी। उनका आपस में मिलना जुलना तक बगैर पोलिटिकल डिपार्टमेंन्ट की स्वीकृति के मुश्किल था। पर जब हवा बदलने लगी तब सन् 1921 में नरेन्द्र मंडल की बुनियाद ब्रिटिश सरकार द्वारा ही डाली गई। 8 फरवरी 1921 के शाही फरमान द्वारा सम्राट ने नरेन्द्र मंडल की स्थापना की।[9]

देशी राज्यों के सामूहिक हितों को सुरक्षित रखने के उद्‌देश्य से यह संस्था भारत सरकार के पोलिटिकल डिपार्टमेंट से सीधे संपर्क कर राज्यों से संबंधित विभिन्न मसलों पर विचार करती थी। इस प्रकार नरेन्द्र मंडल का निर्माण और उसकी स्थायी समिति की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है, क्योंकि इसके द्वारा देशी राज्यों को एक–दूसरे से अलग रखने की नीति का त्याग कर उनके परस्पर सहयोग और सौहार्द्रता का मार्ग प्रशस्त किया गया। भारत में फैल रही जन जागृति के मुकाबले में नरेन्द्र मंडल का उपयोग करना ब्रिटिश सरकार के लिए अधिक लाभदायक था। इसके लिए यह भी आवश्यक था कि ब्रिटिश सरकार की पकड़ देशी राज्यों पर लगातार मजबूत होती जाये। माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर पहले जिन राज्यों का नियंत्रण प्रायः प्रांतीय सरकारों के अधीन था, उनका नियंत्रण सीधे वायसराय और गर्वनर जनरल के अधीन कर दिया गया। भारत सरकार का पोलिटिकल डिपार्टमेंट भारत के समस्त देशी राज्यों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी बन गया।

वह सीधा वायसराय के मातहत काम करता था, जिसमें पोलिटिकल सेक्रेटरी, एजेंट टू गर्वनर जनरल, रेसीडेंट आदि अधिकारी होते थे। इन तमाम अधिकारियों को बहुत व्यापक और अलग–अलग अधिकार दिए गए थे, जिनका कहीं कोई खुलासा नहीं किया गया था। यह राज्यों के महत्व, नरेशों के स्वभाव और पोलिटिकल अधिकारी की मर्जी पर निर्भर करता था। आमतौर पर छोटे राज्यों पर इनका व्यापक अधिकार होता था। सारा काम बडी गोपनीयता से होता था, जिसके कारण नरेशों पर इस महकमें का भयंकर आतंक रहता था।[10] स्पष्ट है कि देशी राज्यों पर ब्रिटिश सरकार का शिकंजा कसता गया तथा अनेक स्तर पर हस्तक्षेप होता गया।

इस प्रकार देशी राज्यों के प्रति ब्रिटिश निति के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि समय के प्रवाह के साथ–साथ इसमें परिवर्तन होते रहे। जहाँ एक ओर प्रारंभ में ब्रिटिश निती राज्यों के साथ बराबरी के संबंध स्थापित करने की रही वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश शक्ति के परिणाम स्वरूप राज्यों में हस्तक्षेप कर उन्हें अपना अधीनस्थ बनाना भी ब्रिटिश नीति का मुख्य उद्‌देश्य था। छत्तीसगढ़ के राज्य चूंकि ब्रिटिश सरकार के सामंत के रूप में अस्तित्व में थे, अतः इन पर ब्रिटिश नियंत्रण और हस्तक्षेप अपेक्षाकृत अधिक था।

## जनता का शोषण

भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के पश्चात् देशी नरेशों और सामंतों पर शनैः शनैः ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता का दबाव बढ़ता गया। बढ़ती हुई ब्रिटिश शक्ति की तुलना में सब तरह से कमजोर और आपसी वैमनस्य के कारण एक दूसरे से अलग–थलग पड़े हुए नरेशों को अंततः ब्रिटिश सरकार से आंतरिक एवं बाह्य खतरों से सुरक्षा की गारंटी तो मिली, लेकिन उनके मामलों में ब्रिटिश हस्तक्षेप भी क्रमशः बढता ही गया। इस प्रकार बिना युद्ध किए ही अंग्रेजों ने देशी राज्यों के अधीन भारत की जनसंख्या पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। अधिकांश राज्यों में निरंकुश दमनकारी शासन था और सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से ये पिछड़े हुए थे। राजा, जमींदार और नवाब अपने विलासिता के लिए राजकोष का मनमाना इस्तेमाल करते थे। प्रजा कर के बोझ से दबी हुई थी। ब्रिटिश भारत की तुलना में देशी राज्यों में भूमि कर काफी अधिक था। न्याय व्यवस्था का अभाव था और नागरिक अधिकारों का नामो–निशान तक नहीं था। इस शोषण के लिए ब्रिटिश सरकार भी उतनी ही उत्तरदायी थी जितने कि ये राजा, जमीदार और नवाब।

छत्तीसगढ़ पूर्णरूपेण एक कृषि प्रधान प्रदेश है। यहाँ की समस्या मूलतः किसानों से सम्बन्धित रही है। इस क्षेत्र की आबादी कम और उत्पादन विपुल होने के कारण यहाँ के किसानों के समक्ष किसी प्रकार की कोई तात्कालिक समस्या नहीं थी। किसान राजा को नजराना देकर अपनी क्षमतानुसार खेती करता था और भूमि पर ग्रामीणों का सामूहिक अधिकार होता था। अंग्रेजी शासनकाल में पहली बार यहाँ भूमि की व्यवस्था की गई और भूमि कराधान के अन्तर्गत लाई गई। इसी के साथ इस क्षेत्र में सामन्तीय शोषण की प्रक्रिया का आरंभ हुआ। इस सामन्तीय व्यवस्था ने बेगार की प्रथा को भी जन्म दिया। उन दिनों बेगार की प्रथा अनेक स्तरों पर प्रचलित थी। मुकद्दम किसानों से बेगारी लेता था। मुकद्दम को मालगुजार के यहाँ बेगारी करनी पड़ती थी। मालगुजार को जमीदारों के यहाँ और जमींदारों को अधिकारियों के यहाँ बेगारी करनी पड़ती थी। इस तरह बेगारी के रूप में शोषण होता था।[11]

जमींदारों की उत्पत्ति के समय का समाज दो वर्गो में विभाजित था। एक वर्ग जमीदारों का था, जो भूमि का स्वामी होता था और दूसरा वर्ग शासित किसानों एवं दासों का था। अपने प्रारंभिक काल में जमींदारों ने स्थानीय सुरक्षा, कृषि और न्याय के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किये, परन्तु कालान्तर में व्यक्तिगत स्वार्थो की पूर्ति ही जमींदारों का उद्देश्य बन गया। ये जमींदार विचित्र शौकों में डूबे रहतें थें और जनहित की कोई परवाह न करते थे। छत्तीसगढ़ के जमींदारों पर परोक्ष नियंत्रण रखने वाली शक्ति केन्द्रीय शक्ति कहलाती थी। उनके अस्तित्व का एक मात्र आधार यह था कि आवश्यकतानुसार वे केन्द्रीय शक्ति को सभी प्रकार की सहायता पहुँचाते थे। सारे कर जमींदारों द्वारा अपने निजी लाभ लिए वसूल किये जाते थे और जनता पर कर–भार बढ़ता जाता था। जमींदार किसानों को कर पटाने के लिए बाध्य कर देते थे। जमींदारियों के ब्रिटिश नियंत्रण में आने के पश्चात् किसानों की स्थिति और खराब हो गई। अब जमींदारो अथवा सामंती नरेशों द्वारा ब्रिटिश सरकार को नजराना देने के लिए किसानों का और शोषण किया जाने लगा। अतः अकालों के कारण स्थिति और भी खराब होती गई।

छत्तीसगढ़ की चांगभखार, सरगुजा, बस्तर, कांकेर, इत्यादि राज्यों की प्रजा अधिकांशतः आदिवासी थी, जो अपने राजा या आधिपति को देव तुल्य मानती थी। वे राजा को स्वप्न में भी अत्याचारी नहीं मान सकते थे। राजा कितना ही विलासी, अत्याचारी या शोषक क्यों न रहा हो, जनता उसे बराबर सम्मान देती थी। राजा की सहायता के लिए अंग्रेजों ने एक दीवान नियुक्त कर रखा था। इसके अतिरिक्त रायपुर में अंग्रेजों की ओर एक पोलिटिकल एजेन्ट पदस्थ था। यह छत्तीसगढ़ क्षेत्र के सामंती राज्यों की देख–रेख करता था।[12] आदिवासी प्रजा अपने राजा को ही सर्वशक्तिमान मानती थी, इसलिए उन्हें यह सुनकर आश्चर्य होता था कि राजा अपने राज्य में दूसरों पर आश्रित था। आदिवासी बाहर से थोपे गए किसी अधिकारी को मानने के लिए तैयार नहीं थे। राज्य के अधिकारी और कर्मचारी आदिवासियों से दुर्व्यवहार करते थे। वे आदिवासियों के समक्ष अन्यायपूर्ण माँग रखते थे। जो लोग बाहर से आए थे, वे व्यापार के माध्यम से आदिवासियों का शोषण करते थे। शराब–ठेकेदारों का शोषण भी आदिवासियों के असंतोष का कारण था। राज्य की मँहगाई ने आदिवासियों को असंतुष्ट बना दिया था। असंतोष के लिए आदिवासी राज्य में ब्रिटिश हस्तक्षेप को कारण मानते थे।[13]

छत्तीसगढ़ में मजदूरों का शोषण भी हो रहा था, जिसका एक मात्र केन्द्र राजनांदगाँव राज्य का बंगाल–नागपुर कॉटन मिल्स था। यह अंचल में तत्कालीन समय में केवल एक ही बडा औद्योगिक उपक्रम था, जिसमें बडी संख्या में मजदूर कार्य करते थे। इन मजदूरों को प्रतिदिन 12–13 घंटे कार्य करना होता था, जो असंतोष का मुख्य कारण था।[14] इसके अलावा यहाँ काम करने वाले मजदूरों को तरह–तरह की यातनायें दी जाने लगी थी। इन मिल मजदूरों का कोई संगठन व नेता नहीं था, जो अत्याचार का विरोध कर सके। राज्य के अधिकारी मजदूरों की शिकायत पर विचार तक नहीं करते थे।

छत्तीसगढ़ के सामंती राज्यों की जनता का शोषित होने के पीछे मुख्य कारण उनका अशिक्षित होना था। अधिकतर राजाओं ने जनता को शिक्षित करने में उदासीनता बरती। उनकी धारणा यह थी कि अशिक्षित जनता पर मनमाने ढ़ंग से शासन किया जा सकता था। यदि लोग पढ़–लिखकर शिक्षित हो जाएंगें, तो वे अधिकारों को समझने लगेंगे और उन्हें प्राप्त करने के लिए आन्दोलन करेंगें। अपनी इसी धारणा के कारण प्रजा को शिक्षित करने का कोई प्रयास उन्होनें नहीं किया। अशिक्षित होने के बावजूद जनता शान्त किन्तु अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने वाली थी। उसने अपनी प्रतिक्रिया विभिन्न आंदोलनों के माध्यम से दिखाई।

यह निर्विवादित सत्य है कि सामंतीय व्यवस्था में जनता सदैव शोषण का शिकार होती है। छत्तीसगढ़ में यह व्यवस्था पुरातन समय से विद्यमान थी, जिसे कलचुरि और मराठा शासनकाल में यथावत रखा गया। ब्रिटिश नियंत्रण में आने के पश्चात् सामंती नरेशों का नियंत्रण प्रशासन पर से शिथिल होता गया, जिसका लाभ उठाकर कर्मचारी, व्यापारी और साहूकार जनता के शोषण में लग गये। जहाँ एक ओर राज्य के कर्मचारी प्रजा पर भूमिकर और अन्य करों का बोझ बढ़ाने लगे, वहीं दूसरी ओर व्यापारी, ठेकेदार और साहूकारों ने मिलकर भोली–भाली जनता के शोषण में कोई कसर नहीं छोड़ी। व्यापारी स्थानीय लोगों से सस्ती दरों पर वस्तुएं खरीदतें थे और अपनी वस्तुएं महगीं दरों पर बेचते थे, ठेकेदार वनों की कटाई, सडक निर्माण आदि में स्थानीय लोगों से बेगारी करवाते थे, तो साहूकार किसानों और आदिवासियों को ऋण देकर मनमाना ब्याज लेते थे। कुल मिलाकर ब्रिटिश नियंत्रण में सामंती राज्यों की प्रजा का शोषण अपनी चरम सीमा पर था।

**जनप्रतिक्रिया**

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की लहर ने पूरे देश के साथ छत्तीसगढ़ के सामंती राज्यों की जनता को भी प्रभावित किया। देश में आजादी की पहली मशाल 1857 में बैरकपूर में प्रज्वलित हुई और उसकी ज्योति ने एक हाथ से दूसरे एवं एक गाँव से दूसरे गाँव तथा एक नगर से दूसरे नगर तक पहुँचते पहुँचते छत्तीसगढ़ के आदिवासियों, मजदूरों और किसानों को जागृत कर दिया। यहाँ के आदिवासी आरंभ से ही स्वतंत्रता प्रेमी रहे हैं, किन्तु उनके सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप ने उन्हें विद्रोह हेतु विवश किया।

सन् 1910 का बस्तर विद्रोह आदिवासियों द्वारा किया गया एक व्यापक जन आन्दोलन था। यह आन्दोंलन बस्तर की आजादी की लडाई में प्रमुख स्थान रखता है जो "भूमकाल" के नाम से याद किया जाता है। यह विद्रोह "बस्तर, बस्तरवासियों का है।" – इस नारे को लेकर प्रारम्भ हुआ। इस विद्रोह में जमींदारों और अधिकारियों को छोड़कर शेष सभी बस्तरवासियों ने भाग लिया।[15] इस आन्दोलन की सबसे बडी विशेषता इसकी गुप्त तैयारी थी। विद्रोह के पूर्व बस्तर के गाँव में एक तीर, लाल मिर्च, मिट्टी का टुकडा, धनुष या भाले की अनुकृतियाँ घुमाई गई। यह सांकेतिक भाषा में विद्रोह के लिए तैयार रहने का संदेश था, जिसे आदिवासी समझते थे। इस समय बस्तर का राजा रूद्रप्रताप–देव था। उसकी सहायता के लिए अंग्रजों ने दीवान नियुक्त कर रखा था। इस प्रशासनिक व्यवस्था से राज्य परिवार के सदस्य असंतुष्ट थे। आदिवासी भी दीवान से नाराज थे, क्योंकि उन्होंने आरक्षित वन पद्धति को बढ़ावा दिया था। बेगार व भूमि–सम्बन्धी विवाद ने स्थिति को विस्फोटक बना दिया। इसके लिए आदिवासी दीवान को ही एक मात्र दोषी मानते थे। आदिवासी दीवान से इसलिए भी नाराज थे कि उन्हें राजा से प्रत्यक्ष भेंट करने की इजाजत न थी। दीवान के कार्य इस विद्रोह के कारण बने और आदिवासी आन्दोलित हो उठे।

आन्दोलन के समाचार से राजा बहुत परेशान हुआ और उसने इसकी सूचना ब्रिटिश अधिकारियों को दी। विद्रोह को दबाने का दायित्व मि. गेयर और डीब्रे को सौंपा गया। इस विद्रोह में भाग लेने वाले प्रमुख नेता थे– लाल कालेन्द्र सिंह, रानी सुवर्णकुंवर, गुण्डाधुर, कुंवर बहादुर सिंह, बालाप्रसाद नाजिर, दुलार सिंह आदि। जिन प्रमुख व्यक्तियों ने इस विद्रोह को दबाने में प्रशासन का साथ दिया, वे पुरस्कृत किये गये। विद्रोहियों पर मुकदमा चलाया गया। सात को फाँसी की सजा दी गई। रानी को निर्वासित कर दिया गया। लाल कालेन्द्र सिंह को एलिचपुर जेल में नजरबंद रखा गया। इस प्रकार यह विद्रोह बड़ी कठोरता के साथ अंग्रेजों द्वारा कुचल दिया गया।

जहाँ एक ओर बस्तर राज्य आदिवासी विद्रोह का केन्द्र बना, दूसरी ओर राजनांदगांव राज्य मजदूर आंदोलन के लिए प्रसिद्ध हुआ। यहाँ बंगाल–नागपुर कॉटन मिल्स में मजदूर बड़ी संख्या में कार्य करते थे। इन मजदूरों को प्रतिदिन 12–13 घण्टे कार्य करना पडता था। अतः मजदूरों ने इस अन्याय के खिलाफ असंतोष जाहिर करते हुए ठाकुर प्यारेलाल सिंह के नेतृत्व में आंदोलन प्रारम्भ कर दिया।[16] सन् 1920 में "मजदूरों ने 37 दिनों तक हडताल की। अतंतः मिल मालिकों को मजदूरों की मांग स्वीकार करनी पड़ी। इसी प्रकार सन् 1924, 1936–37 तथा 1938 में मिल–मजदूरों ने हड़ताल की। भारत के श्रमिक आंदोलन में राजनांदगाँव स्थित बंगाल–नागपुर कॉटन मिल के मजदूरों का आंदोलन काफी महत्व रखता है।

छत्तीसगढ़ आंरम्भ से ही एक कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहाँ की समस्या मूलतः किसानों से सम्बन्धित रही है। अंग्रेजी शासन में पहली बार यहाँ भूमि व्यपस्थापन किया गया और इसी के साथ इस क्षेत्र में शोषण की प्रक्रिया तीव्र हो गई। किसानों से भूमिकर के अतिरिक्त बेगार भी लिया जाता था। उन दिनों बेगार की प्रथा अनेक स्तरों पर प्रचलित थी। इस बेगार प्रथा के खिलाफ यहाँ के किसानों ने आवाज उठायी। बेगार की समाप्ती, मालगुजारी प्रथा की समाप्ति, लगान की माफी, महाजनों के शोषण से मुक्ति एवं भूमिहीनों हेतु भूमि आदि की मांग किसानों द्वारा इन आंदोलनों के माध्यम से की गई। पण्डित सुंदरलाल शर्मा, बाबूछोटे लाल, नत्थूजी जगताप, नरसिंह प्रसाद अग्रवाल आदि ने किसान आंदोलन को नई दिशा दी।[17]

कोरिया रियासत की अधिकांश जनता गोंड़ जनजाति की थी। जो अत्यंत असभ्य एवं अशिक्षित थी। गोड़ों को राज्य के लिए सड़क बनाना, पालकी ढोना तथा राजा–रानी के अतिथियों के लिए जगली जानवरों का शिकार करना पड़ता था। इस बेगार प्रथा से गोंड़ो में

तीव्र असंतोष विद्यमान था, जो 1932 ई. में आंदोलन के रूप में प्रस्फुटित हुआ।[18] इसी प्रकार छुईखदान राज्य में 1938 में "कर न पटाओ" आंदोलन आरम्भ हुआ। शासन ने कड़ी कार्यवाही कर अनेक गिफ्तारियाँ की, किन्तु जनता वहाँ से तत्कालीन जमीदांर का विरोध करती रही, सक्ती राज्य में भी तत्कालीन राजा की कृषि नीति से गौटियों व कृपकों में असन्तोष उत्पन्न हो गया था। इस असंतोष का मूल कारण यह था कि कुछ गौटियों को बेदखल का दिया गया था। आंदोलन करने के लिए 1947 में एक आम सभा बुलाई गई। सभा में उपस्थित जनसमुदाय व प्रतिनिधियों ने राज्य की कृषि व भूमिनिति की कटु आलोचना की। यह आंदोलन काफी व्यापक और उग्र हो चला था। आंदोलन को समाप्त करने के लिये जेल में आन्दोलनकारियों को मुक्त कर दिया गया, परन्तु उनकी माँगें स्वीकार नहीं की गई। इस प्रकार छत्तीसगढ़ में आदिवासियों, मजदूरों के अलावा एक तीसरे बड़े वर्ग किसानों द्वारा भी आंदोलन चलाया गया, जो काफी समय तक प्रभावी रहा। इन आन्दोलनों के माध्यम से सामंती राज्यों में जन आंदोलन का मार्ग प्रशस्त होता गया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि छत्तीसगढ़ के सामंती राज्यों के आदिवासी, मजदूर तथा किसान ब्रिटिश सरकार की शोषण नीतियों से तथा शासकों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों से असंतुष्ट थे। यह असंतोष जन प्रतिक्रिया के रूप में उभर रहा था। बस्तर का "भूमकाल" विद्रोह, राजनांदगाँव का मजदूर आंदोलन तथा अनेक राज्यों में उभर रहे कृषक आंदोलन, इस जन प्रतिक्रिया के उदाहरण है। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश क्षेत्रों में स्वाधीनता के लिए चल रहे आंदोलनों का सामंती राज्यों की जनता पर भी प्रभाव पड़ा। राज्यों के अनेक बुद्धिजीवी ब्रिटिश क्षेत्रों के कांग्रेसी नेताओं के संपर्क में थे तथा अपने राज्यों में आंदोलन चलाने को उत्सुक थे। इससे जनप्रतिक्रिया को विस्तृत स्वरूप प्राप्त होने लगा।

## संदर्भ सूची


1. चिशम, रिपोर्ट ऑफ दी लैण्ड रेवेन्यू, सेटलमेन्ट ऑफ द बिलासपुर डिस्ट्रिक्ट इन द सेन्ट्रल प्रॉविन्सेज, 1868, पृ. 64 व पृ. 99.
2. आर. टेम्पल, रिपोर्ट आन द जमींदारी एण्ड पेटी चीफटेन्स ऑफ सी.पी., 1863, पृ. 43.
3. आर.एच. क्रेडाक, ए नोट आन द स्टेट्स ऑफ द जमींदार्स ऑफ द सी.पी., 1883, पृ. 4.
4. प्यारे लाल गुप्त, प्राचीन छत्तीसगढ़, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय प्रकाशन, रायपुर, 1963, पृ. 136.
5. बलदेव प्रसाद मिश्र, छत्तीसगढ़ परिचय, हिन्दी प्रकाशन, इलाहाबाद, 1960, पृ. 118.
6. एच.एच. डाडवेल, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग – 6, एस. चांद एण्ड सन्स, दिल्ली, 1958, पृ. 276.
7. फॉरेन डिपार्टमेंट (पोलिटिकल ए) प्रोसिडिंग्स, मई 1865, क्र. 269–271.
8. फॉरेन एंड पोलिटिकल डिपार्टमेंट, सितंबर 1919, क्र. 5–6 पार्ट बी.
9. बैजनाथ महोदय, रियासतों का सवाल, 1947, पृ. 20.
10. उपरोक्त, पृ. 3–4.
11. भगवान सिंह वर्मा, छत्तीसगढ़ का इतिहास, मध्यप्रदेश हिंन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2001, पृ. 200.
12. उपरोक्त, पृ. 203.
13. उपरोक्त, पृ. 203.
14. उपरोक्त, पृ. 197.
15. उपरोक्त, पृ. 202.
16. ठाकुर विद्याभूषण, राजनांदगाँव – एक परिचय, आशीष प्रेस, रायपुर, 1953, पृ. 28.
17. भगवान सिंह वर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 200.
18. सुरेश चंद्र शुक्ला, छत्तीसगढ़ की रियासतों का विलीनीकरण, शिक्षा दूत ग्रंथागार प्रकाशन, रायपुर, 2002, पृ. 114.